

सामाजिक न्याय: डॉ. बी.आर. अंबेडकर और जॉन रॉल्स का एक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. सुमीत कुमार गुप्ता

सहायक आचार्य(अतिथि व्याख्याता)- राजनीति विज्ञान

शासकीय गुंडाधूर स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

कोण्डागाँव (छ.ग.) – 494226

सारांश(Abstract)

सामाजिक न्याय की अवधारणा आधुनिक राजनीतिक दर्शन का एक केंद्रीय विषय है। इस संदर्भ में डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर और जॉन रॉल्स दो महत्वपूर्ण चिंतक हैं, जिन्होंने अपने-अपने सामाजिक और ऐतिहासिक संदर्भों में न्याय का व्यापक प्रतिपादन किया।

डॉ. अंबेडकर के लिए सामाजिक न्याय का अर्थ केवल विधिक समानता नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समानता की वास्तविक स्थापना था। भारतीय समाज में व्याप्त जाति-व्यवस्था और अस्पृश्यता को वे अन्याय की जड़ मानते थे। उनकी दृष्टि में न्याय का आधार 'स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व' है, जो 'जाति का उन्मूलन' जैसे उनके लेखन में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित हुआ है। अंबेडकर ने संवैधानिक उपायों, आरक्षण नीति और मौलिक अधिकारों के माध्यम से वंचित वर्गों के सशक्तिकरण पर बल दिया। दूसरी ओर, जॉन रॉल्स ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'न्याय का सिद्धान्त' में 'न्याय को निष्पक्षता' (Justice as Fairness) के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने 'मूल स्थिति' (Original Position) और 'अज्ञान का आवरण' (Veil of Ignorance) जैसी परिकल्पनाओं के माध्यम से यह प्रतिपादित किया कि न्यायपूर्ण समाज में समान स्वतंत्रताएँ सुनिश्चित हों और सामाजिक-आर्थिक असमानताएँ तभी स्वीकार्य हों जब वे समाज के सबसे कमजोर वर्ग के अधिकतम हित में हों।

तुलनात्मक रूप से देखा जाए तो अंबेडकर का दृष्टिकोण अधिक व्यावहारिक और सामाजिक यथार्थ पर आधारित है, जबकि रॉल्स का दृष्टिकोण दार्शनिक और सैद्धांतिक है। दोनों ही समानता और मानव गरिमा को केंद्र में रखते हैं, परंतु अंबेडकर सामाजिक संरचनात्मक अन्याय के उन्मूलन पर बल देते हैं, जबकि रॉल्स न्यायपूर्ण संस्थागत ढाँचे की रचना पर। इस प्रकार, दोनों चिंतन परंपराएँ सामाजिक न्याय की समृद्ध और बहुआयामी समझ प्रदान करती हैं।

बीज शब्द:- सामाजिक न्याय, समानता, स्वतंत्रता, वितरणात्मक न्याय, न्याय का सिद्धान्त, मूल स्थिति, अज्ञान का परदा, संवैधानिक नैतिकता, जाति उन्मूलन, सामाजिक लोकतंत्र।

प्रस्तावना

सामाजिक न्याय आधुनिक राजनीतिक चिंतन की केंद्रीय अवधारणा है, जो समानता, स्वतंत्रता और मानव गरिमा के सिद्धांतों पर आधारित है। यह केवल विधिक समानता तक सीमित नहीं, बल्कि समाज में संसाधनों, अवसरों और अधिकारों के न्यायपूर्ण वितरण से भी संबंधित है। 20वीं शताब्दी में सामाजिक न्याय की अवधारणा को नई वैचारिक दिशा देने वाले प्रमुख चिंतकों में डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर और जॉन रॉल्स का विशेष स्थान है। दोनों विचारकों ने भिन्न सामाजिक-ऐतिहासिक संदर्भों में न्याय की व्याख्या की, किंतु उनका लक्ष्य एक ऐसे समाज की परिकल्पना करना था जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को समान सम्मान और अवसर प्राप्त हो।

डॉ. अंबेडकर का चिंतन भारतीय समाज की जटिल सामाजिक संरचना, विशेषकर जाति-व्यवस्था और अस्पृश्यता की पृष्ठभूमि में विकसित हुआ। उन्होंने सामाजिक न्याय को सामाजिक परिवर्तन का मूल आधार माना। उनके अनुसार, “जब तक समाज में व्याप्त जन्म-आधारित असमानताएँ समाप्त नहीं होतीं, तब तक वास्तविक लोकतंत्र संभव नहीं है।” अंबेडकर ने स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व को सामाजिक न्याय के तीन आधारस्तंभ के रूप में स्थापित किया। उनकी प्रसिद्ध कृति ‘जाति का उन्मूलन’ में उन्होंने जाति-व्यवस्था को सामाजिक अन्याय का मूल कारण बताया और उसके उन्मूलन को अनिवार्य बताया। वे मानते थे कि सामाजिक न्याय के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता अधूरी है। अंबेडकर का दृष्टिकोण केवल सैद्धांतिक नहीं था, उन्होंने इसे व्यवहार में भी उतारा। भारतीय संविधान के निर्माण में उनकी केंद्रीय भूमिका रही, जिसके माध्यम से उन्होंने समान नागरिक अधिकार, मौलिक अधिकार, और अनुसूचित जाति-जनजाति के लिए आरक्षण जैसी व्यवस्थाओं को संस्थागत रूप दिया। उनके लिए सामाजिक न्याय का अर्थ था। ऐसी सामाजिक संरचना की स्थापना, जिसमें शोषित और वंचित वर्गों को सशक्तिकरण का अवसर मिले और वे सम्मानपूर्वक जीवन जी सकें।

इसके विपरीत, जॉन रॉल्स का चिंतन पश्चिमी उदारवादी परंपरा में विकसित हुआ। उन्होंने सामाजिक न्याय को ‘निष्पक्षता के रूप में न्याय’ (Justice as Fairness) की संकल्पना के माध्यम से प्रस्तुत किया। उनकी प्रमुख कृति ‘न्याय का सिद्धान्त’ में उन्होंने ‘मूल स्थिति’ (Original Position) और ‘अज्ञान का आवरण’ (Veil of Ignorance) की काल्पनिक स्थिति का प्रतिपादन किया, जिसके माध्यम से वे यह सिद्ध करना चाहते थे कि न्याय के सिद्धांत ऐसे होने चाहिए जिन्हें कोई भी व्यक्ति, अपने सामाजिक-आर्थिक स्थान से अनभिज्ञ रहते हुए, स्वीकार कर सके। रॉल्स ने दो प्रमुख सिद्धांत दिए - पहला, सभी के लिए समान मौलिक स्वतंत्रताएँ, और दूसरा, सामाजिक-आर्थिक असमानताएँ तभी स्वीकार्य हैं जब वे समाज के सबसे कमजोर वर्ग के अधिकतम हित में हों।

अंबेडकर और रॉल्स दोनों के चिंतन में समानता और मानव गरिमा की केंद्रीय भूमिका है, किंतु उनके दृष्टिकोणों में महत्वपूर्ण भिन्नताएँ भी हैं। अंबेडकर का चिंतन ऐतिहासिक अन्याय और सामाजिक भेदभाव के प्रत्यक्ष अनुभवों से प्रेरित था, जबकि रॉल्स का दृष्टिकोण एक दार्शनिक और काल्पनिक सामाजिक अनुबंध पर आधारित है। अंबेडकर सामाजिक संरचना में आमूल-चूल परिवर्तन के पक्षधर थे, जबकि रॉल्स न्यायपूर्ण संस्थाओं और नियमों के निर्माण पर बल देते हैं।

यह तुलनात्मक अध्ययन इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि दोनों विचारकों के सिद्धांत आज भी समकालीन समाज में प्रासंगिक हैं। वैश्वीकरण, आर्थिक असमानता, पहचान की राजनीति और सामाजिक बहिष्करण जैसे मुद्दों के संदर्भ में सामाजिक न्याय की अवधारणा पुनः केंद्र में आ गई है। भारतीय संदर्भ में अंबेडकर का विचार सामाजिक समावेशन और

संवैधानिक मूल्यों की रक्षा के लिए मार्गदर्शक है, वहीं वैश्विक राजनीतिक दर्शन में रॉल्स का सिद्धांत न्यायपूर्ण संस्थागत ढाँचे की समझ प्रदान करता है।

जॉन रॉल्स: न्याय निष्पक्षता के रूप में (Justice as Fairness)

20वीं शताब्दी के राजनीतिक दर्शन में जॉन रॉल्स का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने उदारवादी परंपरा को एक नई वैचारिक दिशा प्रदान करते हुए न्याय की अवधारणा को “निष्पक्षता के रूप में न्याय” (Justice as Fairness) के रूप में पुनर्परिभाषित किया। 1971 में प्रकाशित उनकी प्रसिद्ध कृति ‘न्याय का सिद्धान्त’ ने सामाजिक और राजनीतिक दर्शन में व्यापक बहस को जन्म दिया। रॉल्स के अनुसार, “न्याय किसी भी सामाजिक संस्था का प्रथम सद्गुण (First virtue of social institutions) है।” जिस प्रकार सत्य विचार-प्रणाली का सर्वोच्च गुण है, उसी प्रकार न्याय सामाजिक संस्थाओं का सर्वोच्च नैतिक मानदंड है। यदि कोई संस्था कितनी भी कुशल या प्रभावी क्यों न हो, परंतु यदि वह अन्यायपूर्ण है, तो उसे सुधारना या समाप्त करना आवश्यक है।

रॉल्स का उद्देश्य एक ऐसे न्याय-सिद्धांत की स्थापना करना था, जिसे स्वतंत्र और समान व्यक्तियों द्वारा तर्कसंगत रूप से स्वीकार किया जा सके। उन्होंने सामाजिक अनुबंध की परंपरा (जैसे लॉक, रूसो और कांट) को आधुनिक रूप में पुनर्जीवित किया, किंतु उसे एक काल्पनिक और नैतिक प्रयोग के रूप में प्रस्तुत किया।

मूल स्थिति (Original Position) और अज्ञानता का पर्दा (Veil of Ignorance)

रॉल्स ने न्याय के सिद्धांतों को निर्धारित करने के लिए एक काल्पनिक स्थिति की कल्पना की, जिसे उन्होंने “मूल स्थिति” (Original Position) कहा। यह ऐसी प्रारंभिक अवस्था है जहाँ समाज के सदस्य मिलकर यह तय करते हैं कि उनके समाज की बुनियादी संरचना किन सिद्धांतों पर आधारित होगी।

इस मूल स्थिति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है -“अज्ञानता का पर्दा” (Veil of Ignorance)। इस पर्दे के पीछे खड़े व्यक्ति यह नहीं जानते कि वास्तविक समाज में उनकी स्थिति क्या होगी। वे यह नहीं जानते कि वे अमीर होंगे या गरीब, पुरुष या महिला, किसी उच्च सामाजिक वर्ग से होंगे या निम्न वर्ग से, प्रतिभाशाली होंगे या साधारण। वे अपनी जाति, धर्म, भाषा, पारिवारिक पृष्ठभूमि, आर्थिक स्थिति और व्यक्तिगत क्षमताओं से अनभिज्ञ रहते हैं।

रॉल्स का तर्क है कि ऐसी स्थिति में व्यक्ति स्वार्थ से प्रेरित होकर भी निष्पक्ष निर्णय लेगा, क्योंकि उसे यह ज्ञात नहीं है कि भविष्य में वह समाज के किस स्थान पर होगा। यदि वह अमीर निकला तो भी, और यदि वह गरीब निकला तो भी। उसे उन्हीं नियमों के अंतर्गत जीवन बिताना होगा जिन्हें उसने मूल स्थिति में स्वीकार किया था। इसलिए वह ऐसे सिद्धांतों को चुनेगा जो सभी के लिए न्यायसंगत हों, विशेषकर सबसे कमजोर वर्ग के लिए। यह “अज्ञानता का पर्दा” न्याय के सिद्धांतों को व्यक्तिगत पक्षपात, सामाजिक पूर्वाग्रह और ऐतिहासिक विशेषाधिकारों से मुक्त करता है। इस प्रकार रॉल्स ने एक नैतिक-दार्शनिक उपकरण के माध्यम से निष्पक्षता को संस्थागत रूप देने का प्रयास किया।

न्याय के दो सिद्धांत

रॉल्स के अनुसार, अज्ञानता के पर्दे के पीछे खड़े तर्कसंगत व्यक्ति दो मुख्य सिद्धांतों को स्वीकार करेंगे। ये सिद्धांत समाज की बुनियादी संरचना को नियंत्रित करेंगे।

1. समान स्वतंत्रता का सिद्धांत (Principle of Equal Liberty):- इस सिद्धांत के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति को समान बुनियादी स्वतंत्रताओं का अधिकार होना चाहिए। इन स्वतंत्रताओं में विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, अंतरात्मा की स्वतंत्रता, संगठन की स्वतंत्रता, मतदान का अधिकार, विधि के समक्ष समानता आदि शामिल हैं।

रॉल्स ने स्पष्ट किया कि इन मौलिक स्वतंत्रताओं को सामाजिक या आर्थिक लाभ के नाम पर कम नहीं किया जा सकता। अर्थात् स्वतंत्रता को प्राथमिकता प्राप्त है। यदि आर्थिक विकास के लिए किसी समूह की स्वतंत्रता का हनन करना पड़े, तो वह न्यायसंगत नहीं होगा। इस प्रकार, रॉल्स का पहला सिद्धांत उदार लोकतांत्रिक व्यवस्था के मूल मूल्यों की रक्षा करता है। यह सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक नागरिक को समान राजनीतिक और नागरिक अधिकार प्राप्त हों।

2. अंतर का सिद्धांत (Difference Principle):- रॉल्स का दूसरा सिद्धांत सामाजिक और आर्थिक असमानताओं से संबंधित है। वे स्वीकार करते हैं कि पूर्ण समानता व्यावहारिक रूप से संभव नहीं है और कुछ असमानताएँ समाज में प्रेरणा और दक्षता के लिए आवश्यक हो सकती हैं। किंतु वे यह भी कहते हैं कि ऐसी असमानताएँ तभी न्यायसंगत हैं जब वे समाज के “सबसे कम सुविधा प्राप्त” (Least Advantaged) वर्ग के अधिकतम हित में हों। इसे ही “अंतर का सिद्धांत” (Difference Principle) कहा जाता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी समाज में डॉक्टर या वैज्ञानिक को अधिक वेतन दिया जाता है, तो यह असमानता तभी उचित है जब इससे संपूर्ण समाज विशेषकर गरीब और वंचित वर्ग को लाभ हो, जैसे बेहतर स्वास्थ्य सेवाएँ या तकनीकी उन्नति।

रॉल्स का तर्क है कि अज्ञानता के पर्दे के पीछे कोई भी व्यक्ति यह जोखिम नहीं उठाएगा कि वह समाज के सबसे निचले स्तर पर पहुँच जाए और उसे न्यूनतम सुविधाएँ भी न मिलें। इसलिए वह ऐसे सिद्धांतों को चुनेगा जो न्यूनतम स्थिति को भी सम्मानजनक और सुरक्षित बनाते हों। यह सिद्धांत आधुनिक कल्याणकारी राज्य की नीतियों जैसे प्रगतिशील कराधान, सामाजिक सुरक्षा, शिक्षा और स्वास्थ्य में समान अवसर को दार्शनिक आधार प्रदान करता है।

निष्पक्षता और नैतिक तर्कसंगतता

रॉल्स के न्याय-सिद्धांत की विशेषता यह है कि यह नैतिकता को तर्कसंगतता के साथ जोड़ता है। उनके अनुसार, व्यक्ति स्वार्थी हो सकता है, परंतु वह तर्कसंगत भी है। अज्ञानता के पर्दे के पीछे वह अपने दीर्घकालिक हितों को ध्यान में रखते हुए ऐसे नियम बनाएगा जो सभी के लिए सुरक्षित हों।

रॉल्स ने उपयोगितावाद की आलोचना की, क्योंकि उपयोगितावाद बहुसंख्यक के अधिकतम सुख के लिए अल्पसंख्यक के अधिकारों की उपेक्षा कर सकता है। इसके विपरीत, रॉल्स का सिद्धांत प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता और गरिमा को अविच्छेद्य मानता है। कोई भी व्यक्ति केवल साधन (means) नहीं, बल्कि अपने आप में उद्देश्य (end in itself) है।

अवसर की निष्पक्ष समानता (Fair Equality of Opportunity)

रॉल्स ने यह भी स्पष्ट किया कि केवल औपचारिक समानता पर्याप्त नहीं है। यदि समाज में कुछ लोग बेहतर शिक्षा, संसाधन और सामाजिक पूँजी के कारण आगे बढ़ते हैं, तो यह वास्तविक समान अवसर नहीं है। इसलिए उन्होंने “अवसर की निष्पक्ष समानता” (Fair Equality of Opportunity) पर बल दिया। इसका अर्थ है कि समान प्रतिभा और परिश्रम वाले व्यक्तियों को, चाहे वे किसी भी सामाजिक पृष्ठभूमि से हों, समान अवसर मिलने चाहिए। इसके लिए राज्य को शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक संरचना में हस्तक्षेप करना होगा ताकि प्रारंभिक असमानताओं को कम किया जा सके।

आलोचना और समकालीन प्रासंगिकता

रॉल्स के सिद्धांत की कई आलोचनाएँ भी हुई हैं। कुछ विचारकों ने इसे अत्यधिक सैद्धांतिक और अमूर्त बताया। सामुदायिकतावादियों ने कहा कि व्यक्ति को समाज से अलग करके देखना अवास्तविक है। वहीं, कुछ मार्क्सवादी विचारकों ने तर्क दिया कि रॉल्स पूँजीवादी संरचना को मूल रूप से चुनौती नहीं देते। फिर भी, रॉल्स का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने न्याय की चर्चा को व्यक्तिगत नैतिकता से हटाकर संस्थागत संरचना की ओर केंद्रित किया। उनका सिद्धांत आज भी सामाजिक नीति, संवैधानिक व्याख्या और वैश्विक न्याय के विमर्श में प्रासंगिक है।

“निष्पक्षता के रूप में न्याय” का सिद्धांत आधुनिक लोकतांत्रिक समाजों के लिए एक नैतिक मार्गदर्शक प्रस्तुत करता है। रॉल्स ने यह स्पष्ट किया कि न्याय केवल परिणामों का प्रश्न नहीं, बल्कि प्रक्रियाओं और संस्थाओं की निष्पक्षता का भी प्रश्न है। समान स्वतंत्रता का सिद्धांत व्यक्ति की गरिमा और अधिकारों की रक्षा करता है, जबकि अंतर का सिद्धांत सामाजिक-आर्थिक असमानताओं को नैतिक कसौटी पर परखता है। अज्ञानता का पर्दा हमें यह सिखाता है कि यदि हम अपनी सामाजिक स्थिति से परे सोचें, तो हम अधिक न्यायपूर्ण समाज की कल्पना कर सकते हैं। इस प्रकार, जॉन रॉल्स का न्याय-सिद्धांत आधुनिक राजनीतिक दर्शन में एक मील का पत्थर है, जिसने सामाजिक न्याय की अवधारणा को तर्कसंगत, नैतिक और संस्थागत आधार प्रदान किया।

डॉ. बी.आर. अंबेडकर: न्याय एक सामाजिक परिवर्तन के रूप में

डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर का सामाजिक न्याय संबंधी चिंतन भारतीय समाज की कठोर वास्तविकताओं विशेषकर जाति-व्यवस्था, अस्पृश्यता और सामाजिक बहिष्कार की पृष्ठभूमि में विकसित हुआ। उनका न्याय-सिद्धांत केवल दार्शनिक या काल्पनिक विमर्श नहीं था, बल्कि वह प्रत्यक्ष अनुभव, सामाजिक संघर्ष और ऐतिहासिक अन्याय की पीड़ा से उपजा था। जहाँ कुछ पश्चिमी चिंतक न्याय को संस्थागत निष्पक्षता या अनुबंध की शर्तों में परिभाषित करते हैं, वहीं अंबेडकर के लिए न्याय का अर्थ था-समाज की संरचना में आमूल-चूल परिवर्तन।

अंबेडकर का मानना था कि भारत में सामाजिक असमानता केवल आर्थिक समस्या नहीं है, बल्कि यह धार्मिक-सांस्कृतिक मान्यताओं द्वारा संरक्षित एक संगठित व्यवस्था है। इसलिए न्याय का प्रश्न केवल संसाधनों के पुनर्वितरण तक सीमित नहीं हो सकता, इसके लिए सामाजिक चेतना, नैतिक मूल्यों और संस्थागत ढाँचे में क्रांतिकारी परिवर्तन आवश्यक है।

जाति का विनाश (Annihilation of Caste)

अंबेडकर के सामाजिक न्याय दर्शन का सबसे सशक्त प्रतिपादन उनकी प्रसिद्ध कृति 'जाति का उन्मूलन' में मिलता है। इस ग्रंथ में उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि जाति-व्यवस्था भारतीय समाज में अन्याय और असमानता की जड़ है। उनके अनुसार, जाति केवल श्रम-विभाजन नहीं है, बल्कि "श्रमिकों का विभाजन" है, जो मनुष्य को जन्म के आधार पर स्थायी रूप से ऊँचा या नीचा ठहरा देता है। अंबेडकर का तर्क था कि जब तक जाति-व्यवस्था बनी रहेगी, तब तक समानता, स्वतंत्रता और लोकतंत्र की स्थापना संभव नहीं है। वे कहते हैं कि राजनीतिक लोकतंत्र तभी टिकाऊ हो सकता है जब उसके आधार में सामाजिक लोकतंत्र हो। यदि समाज में एक वर्ग दूसरे को हीन समझता है, तो संवैधानिक अधिकार भी प्रभावी नहीं हो पाएँगे।

अंबेडकर के लिए न्याय का अर्थ केवल अवसरों की समानता नहीं था, बल्कि मानवीय गरिमा की पुनर्स्थापना था। वे मानते थे कि अस्पृश्यता और जातिगत भेदभाव मनुष्य की आत्मा को कुचल देते हैं। इसलिए न्याय का पहला कदम है, व्यक्ति को उसके जन्म से जुड़े कलंक से मुक्त करना। उनकी दृष्टि में जाति का विनाश केवल सामाजिक सुधार का कार्यक्रम नहीं, बल्कि एक नैतिक क्रांति थी। वे सामाजिक सुधार को राजनीतिक स्वतंत्रता से भी अधिक महत्वपूर्ण मानते थे। उनका स्पष्ट कथन था कि यदि समाज में असमानता बनी रही, तो स्वतंत्रता केवल कुछ लोगों का विशेषाधिकार बनकर रह जाएगी।

स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व: सामाजिक लोकतंत्र का आधार

अंबेडकर ने फ्रांसीसी क्रांति के तीन मूल आदर्श स्वतंत्रता (Liberty), समानता (Equality) और बंधुत्व (Fraternity) को अपने सामाजिक न्याय दर्शन का आधार बनाया। किंतु उन्होंने इन सिद्धांतों को केवल राजनीतिक नारों के रूप में नहीं अपनाया, उन्होंने इन्हें भारतीय संदर्भ में पुनर्परिभाषित किया और गौतम बुद्ध के धम्म से जोड़ा।

अंबेडकर के अनुसार, स्वतंत्रता और समानता तभी स्थायी हो सकती हैं जब समाज में बंधुत्व की भावना हो। बंधुत्व का अर्थ है – एक-दूसरे को समान मानव के रूप में स्वीकार करना, पारस्परिक सम्मान और सहानुभूति रखना। उन्होंने इसे "सामाजिक लोकतंत्र" (Social Democracy) की संज्ञा दी। उनका प्रसिद्ध कथन है कि "न्याय का अर्थ केवल अधिकार देना नहीं है, बल्कि समाज की संरचना को इस प्रकार बदलना है कि कोई भी व्यक्ति जन्म के आधार पर नीचा न समझा जाए।" यह कथन उनके पूरे दर्शन का सार प्रस्तुत करता है।

अंबेडकर ने चेतावनी दी थी कि यदि राजनीतिक लोकतंत्र (एक व्यक्ति, एक वोट) और सामाजिक-आर्थिक असमानता के बीच गहरा अंतर बना रहेगा, तो लोकतंत्र खतरे में पड़ जाएगा। इसलिए उन्होंने सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना पर बल दिया, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को समान सम्मान और अवसर मिले।

संवैधानिक मार्ग और संस्थागत परिवर्तन

अंबेडकर का सामाजिक न्याय दृष्टिकोण केवल वैचारिक नहीं था, उन्होंने इसे संस्थागत रूप देने का प्रयास किया। भारतीय संविधान के निर्माण में उनकी केंद्रीय भूमिका रही। उन्होंने मौलिक अधिकारों, विधि के समक्ष समानता, अस्पृश्यता-निषेध (अनुच्छेद 17) और अनुसूचित जाति-जनजाति के लिए आरक्षण जैसी व्यवस्थाओं को संविधान में स्थान

दिलाया। उनके लिए संविधान केवल कानूनी दस्तावेज नहीं था, बल्कि सामाजिक क्रांति का उपकरण था। वे मानते थे कि राज्य को सक्रिय भूमिका निभाकर ऐतिहासिक अन्यायों की भरपाई करनी चाहिए। इसलिए उन्होंने सकारात्मक भेदभाव (affirmative action) का समर्थन किया।

अंबेडकर का यह दृष्टिकोण इस विचार पर आधारित था कि समाज में सदियों से वंचित वर्गों को समान अवसर देने के लिए केवल औपचारिक समानता पर्याप्त नहीं है। उन्हें विशेष संरक्षण और अवसर देना न्यायसंगत है, क्योंकि यह असमानता को दूर करने का साधन है।

धर्म, नैतिकता और सामाजिक परिवर्तन

अंबेडकर ने सामाजिक न्याय को नैतिक आधार देने के लिए धर्म की पुनर्व्याख्या की। वे ऐसे धर्म के विरोधी थे जो मनुष्य को ऊँच-नीच में बाँटता है। अंततः 1956 में उन्होंने बौद्ध धर्म को अपनाया, क्योंकि उन्हें उसमें समानता, करुणा और तर्कसंगतता के मूल्य दिखाई दिए। उनके लिए धर्म का उद्देश्य सामाजिक नैतिकता को सुदृढ़ करना था, न कि असमानता को वैध ठहराना। उन्होंने कहा कि सच्चा धर्म वही है जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को प्रोत्साहित करे। इस प्रकार, अंबेडकर ने सामाजिक न्याय को केवल कानूनी या राजनीतिक प्रश्न न मानकर, एक नैतिक और सांस्कृतिक क्रांति के रूप में प्रस्तुत किया।

न्याय: पुनर्वितरण से परे

अंबेडकर के चिंतन में न्याय केवल आर्थिक संसाधनों के पुनर्वितरण का प्रश्न नहीं है। वे मानते थे कि आर्थिक सुधार आवश्यक है, किंतु यदि सामाजिक सम्मान और गरिमा नहीं मिलेगी, तो आर्थिक प्रगति भी अधूरी रहेगी। उदाहरण के लिए, यदि किसी दलित व्यक्ति को आर्थिक सहायता मिल भी जाए, परंतु समाज उसे हीन दृष्टि से देखता रहे, तो वह वास्तविक स्वतंत्रता का अनुभव नहीं कर पाएगा। इसलिए अंबेडकर ने सामाजिक सम्मान, आत्म-सम्मान और सांस्कृतिक पहचान को न्याय के केंद्रीय तत्व के रूप में स्थापित किया। उनकी दृष्टि में न्याय का अंतिम उद्देश्य है – ऐसा समाज जहाँ व्यक्ति की पहचान उसके जन्म से नहीं, बल्कि उसकी योग्यता और मानवीय गुणों से निर्धारित हो।

आज भी अंबेडकर का सामाजिक न्याय दर्शन अत्यंत प्रासंगिक है। जातिगत भेदभाव, सामाजिक बहिष्कार और आर्थिक विषमता की समस्याएँ पूरी तरह समाप्त नहीं हुई हैं। ऐसे में अंबेडकर का यह आग्रह कि सामाजिक संरचना में परिवर्तन के बिना न्याय संभव नहीं, हमें गहन आत्ममंथन के लिए प्रेरित करता है। उनका विचार हमें यह सिखाता है कि न्याय केवल सिद्धांतों की बात नहीं है, बल्कि यह सामाजिक व्यवहार, संस्थागत नीतियों और सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन की माँग करता है।

डॉ. बी.आर. अंबेडकर का सामाजिक न्याय दर्शन एक जीवंत, संघर्षशील और परिवर्तनकारी विचारधारा है। उन्होंने न्याय को केवल दार्शनिक विमर्श तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे सामाजिक क्रांति का आधार बनाया। उनके लिए न्याय का अर्थ था – मानवीय गरिमा की पुनर्स्थापना, सामाजिक बंधनों का उन्मूलन और समान अवसरों की सुनिश्चितता।

स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के त्रिसूत्रीय सिद्धांत के माध्यम से उन्होंने सामाजिक लोकतंत्र की परिकल्पना प्रस्तुत की।

इस प्रकार, अंबेडकर का सामाजिक न्याय सिद्धांत हमें यह समझने में सहायता करता है कि वास्तविक न्याय तभी संभव है जब समाज की संरचना इस प्रकार बदली जाए कि कोई भी व्यक्ति जन्म, जाति या सामाजिक पृष्ठभूमि के आधार पर हीन न समझा जाए। यही उनके दर्शन का मूल संदेश और स्थायी प्रासंगिकता है।

तुलनात्मक विश्लेषण: रॉल्स बनाम अंबेडकर

सामाजिक न्याय की अवधारणा को 20वीं शताब्दी में नई बौद्धिक ऊँचाइयों तक पहुँचाने वाले दो महत्वपूर्ण चिंतक हैं – जॉन रॉल्स और डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर। दोनों ने न्याय को समाज की केंद्रीय नैतिक कसौटी माना, किंतु उनके दृष्टिकोण, उपकरण, लक्ष्य और दार्शनिक आधार में महत्वपूर्ण अंतर दिखाई देता है। एक ओर रॉल्स का चिंतन उदारवादी और प्रक्रियात्मक है, जो न्यायपूर्ण संस्थागत ढाँचे के निर्माण पर बल देता है। दूसरी ओर अंबेडकर का चिंतन क्रांतिकारी और संरचनात्मक है, जो सामाजिक व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन की माँग करता है।

1. दृष्टिकोण: उदारवादी एवं प्रक्रियात्मक बनाम क्रांतिकारी एवं संरचनात्मक:- रॉल्स का दृष्टिकोण उदारवादी परंपरा में निहित है। उनकी प्रमुख कृति ‘न्याय का सिद्धान्त’ में उन्होंने न्याय को ‘निष्पक्षता के रूप में न्याय’ (Justice as Fairness) के रूप में परिभाषित किया। वे मानते हैं कि यदि समाज की मूल संरचना निष्पक्ष सिद्धांतों पर आधारित होगी, तो परिणाम भी न्यायपूर्ण होंगे। उनका चिंतन प्रक्रियात्मक (Procedural) है अर्थात् यदि प्रक्रिया निष्पक्ष है, तो उससे उत्पन्न परिणाम भी नैतिक रूप से स्वीकार्य होंगे।

इसके विपरीत, अंबेडकर का दृष्टिकोण संरचनात्मक और क्रांतिकारी है। वे मानते थे कि भारतीय समाज की मूल संरचना ही अन्यायपूर्ण है, क्योंकि वह जाति-व्यवस्था पर आधारित है। उनकी प्रसिद्ध कृति ‘जाति का उन्मूलन’ में उन्होंने स्पष्ट किया कि जब तक सामाजिक ढाँचे में मूलभूत परिवर्तन नहीं होगा, तब तक कोई भी प्रक्रियात्मक सुधार पर्याप्त नहीं होगा।

अतः जहाँ रॉल्स न्यायपूर्ण संस्थाओं की परिकल्पना करते हैं, वहीं अंबेडकर अन्यायपूर्ण सामाजिक संरचना को ध्वस्त कर नई संरचना के निर्माण की बात करते हैं।

2. मुख्य उपकरण: अज्ञानता का पर्दा बनाम संवैधानिक सुरक्षा और आरक्षण:- रॉल्स का मुख्य दार्शनिक उपकरण है – ‘अज्ञानता का पर्दा’ (Veil of Ignorance) और ‘मूल स्थिति’ (Original Position)। यह एक काल्पनिक स्थिति है, जहाँ व्यक्ति अपनी सामाजिक-आर्थिक पहचान से अनभिज्ञ होकर न्याय के सिद्धांतों का चयन करता है। यह एक बौद्धिक प्रयोग है, जिसका उद्देश्य निष्पक्षता सुनिश्चित करना है।

इसके विपरीत, अंबेडकर का उपकरण व्यावहारिक और संवैधानिक था। उन्होंने भारतीय संविधान के माध्यम से सामाजिक न्याय को संस्थागत रूप दिया। मौलिक अधिकार, विधि के समक्ष समानता, अस्पृश्यता-निषेध (अनुच्छेद 17) तथा अनुसूचित जाति-जनजाति के लिए आरक्षण जैसी व्यवस्थाएँ उनके व्यावहारिक दृष्टिकोण को दर्शाती हैं।

रॉल्स का उपकरण दार्शनिक विमर्श का साधन है, जबकि अंबेडकर का उपकरण सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन का माध्यम है। रॉल्स निष्पक्ष सिद्धांतों की कल्पना करते हैं, अंबेडकर उन सिद्धांतों को लागू करने के लिए ठोस संवैधानिक उपाय अपनाते हैं।

3. लक्ष्य: निष्पक्ष वितरण बनाम जाति का उन्मूलन और सम्मान:- रॉल्स का मुख्य लक्ष्य है – संसाधनों और अवसरों का निष्पक्ष वितरण (Fair Distribution)। वे सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को पूर्णतः समाप्त करने की बात नहीं करते, बल्कि उन्हें “अंतर के सिद्धांत” (Difference Principle) के अंतर्गत उचित ठहराते हैं, बशर्ते वे समाज के सबसे कम सुविधा प्राप्त वर्ग के हित में हों।

इसके विपरीत, अंबेडकर का लक्ष्य केवल संसाधनों का पुनर्वितरण नहीं था। वे जाति-व्यवस्था के उन्मूलन और मानवीय गरिमा की स्थापना को सामाजिक न्याय का केंद्रीय तत्व मानते थे। उनके लिए न्याय का अर्थ था – व्यक्ति को जन्म-आधारित हीनता से मुक्त करना और उसे सम्मानजनक जीवन प्रदान करना।

रॉल्स का दृष्टिकोण आर्थिक असमानता पर केंद्रित है, जबकि अंबेडकर का दृष्टिकोण सामाजिक अपमान और सांस्कृतिक बहिष्कार को भी उतना ही महत्वपूर्ण मानता है। अंबेडकर के लिए “सम्मान” न्याय का मूल तत्व है।

4. धार्मिक एवं नैतिक आधार: धर्मनिरपेक्ष तर्कशीलता बनाम बौद्ध नैतिकता: रॉल्स का सिद्धांत मूलतः धर्मनिरपेक्ष और तर्कसंगत आधार पर टिका है। वे न्याय को किसी धार्मिक या सांस्कृतिक परंपरा से नहीं जोड़ते, बल्कि उसे सार्वभौमिक तर्क और निष्पक्षता पर आधारित करते हैं। उनका उद्देश्य ऐसा सिद्धांत देना था, जिसे विविध समाजों में समान रूप से स्वीकार किया जा सके।

अंबेडकर ने भी तार्किकता को महत्व दिया, किंतु उन्होंने अपने सामाजिक न्याय दर्शन को नैतिक आधार देने के लिए बौद्ध धर्म को अपनाया। गौतम बुद्ध के करुणा, समता और बंधुत्व के सिद्धांतों को उन्होंने सामाजिक लोकतंत्र का आधार माना। उनके लिए धर्म का उद्देश्य सामाजिक नैतिकता को सुदृढ़ करना था, न कि असमानता को वैध ठहराना। इस प्रकार, जहाँ रॉल्स का आधार सार्वभौमिक तर्क है, वहीं अंबेडकर का आधार नैतिक-मानवीय मूल्यों से प्रेरित धर्म है।

5. समानताएँ:- यद्यपि दोनों के दृष्टिकोण भिन्न हैं, फिर भी कुछ महत्वपूर्ण समानताएँ भी हैं-

1. **मानव गरिमा का सम्मान** – दोनों चिंतक व्यक्ति को अपने आप में उद्देश्य मानते हैं।
2. **समानता पर बल** – दोनों सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को नैतिक कसौटी पर परखते हैं।
3. **कमजोर वर्ग की चिंता** – रॉल्स का “Least Advantaged” और अंबेडकर का “वंचित वर्ग” – दोनों का केंद्र समाज का कमजोर तबका है।
4. **संस्थागत सुधार** – दोनों न्याय को संस्थागत संरचना से जोड़ते हैं।

6. मूलभूत अंतर:- फिर भी, दोनों के बीच कुछ बुनियादी अंतर स्पष्ट हैं—

- **ऐतिहासिक संदर्भ:** रॉल्स का समाज वर्गीय असमानताओं पर आधारित था, अंबेडकर का समाज जातिगत पदानुक्रम पर।
- **परिवर्तन की प्रकृति:** रॉल्स सुधारवादी (Reformist) हैं, अंबेडकर परिवर्तनकारी (Transformative)।
- **व्यावहारिकता:** रॉल्स का सिद्धांत अधिक सैद्धांतिक है, अंबेडकर का दृष्टिकोण अनुभवजन्य और क्रियात्मक।
- **सांस्कृतिक आयाम:** रॉल्स सांस्कृतिक अपमान के प्रश्न पर कम बोलते हैं, अंबेडकर इसे न्याय का केंद्रीय मुद्दा बनाते हैं।

रॉल्स और अंबेडकर दोनों ने सामाजिक न्याय की अवधारणा को समृद्ध किया है, किंतु उनके योगदान की प्रकृति भिन्न है। रॉल्स ने न्याय की एक सार्वभौमिक, तर्कसंगत और उदारवादी रूपरेखा दी, जो लोकतांत्रिक संस्थाओं के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत प्रस्तुत करती है। अंबेडकर ने न्याय को सामाजिक क्रांति का आधार बनाते हुए उसे ठोस राजनीतिक और संवैधानिक उपायों से जोड़ा। यदि रॉल्स हमें यह सिखाते हैं कि निष्पक्ष सिद्धांत कैसे गढ़े जाएँ, तो अंबेडकर हमें यह बताते हैं कि अन्यायपूर्ण संरचनाओं को कैसे बदला जाए। रॉल्स का चिंतन न्याय के सिद्धांत की रूपरेखा देता है, अंबेडकर का चिंतन न्याय के संघर्ष की दिशा दिखाता है।

तुलनात्मक दृष्टि से कहा जा सकता है कि रॉल्स और अंबेडकर दोनों सामाजिक न्याय के अनिवार्य स्तंभ हैं। रॉल्स का उदारवादी-प्रक्रियात्मक मॉडल न्यायपूर्ण वितरण की सैद्धांतिक नींव रखता है, जबकि अंबेडकर का क्रांतिकारी-संरचनात्मक मॉडल सामाजिक अपमान और जातिगत असमानता को समाप्त करने का व्यावहारिक मार्ग प्रदान करता है।

समकालीन समाज में, जहाँ आर्थिक असमानता के साथ-साथ पहचान-आधारित भेदभाव भी मौजूद है, वहाँ दोनों के विचारों का समन्वय अधिक सार्थक प्रतीत होता है। निष्पक्ष संस्थागत ढाँचे के साथ-साथ सामाजिक संरचना में परिवर्तन इन्हीं दोनों के संयुक्त प्रयास से वास्तविक सामाजिक न्याय की स्थापना संभव है।

वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता

21वीं शताब्दी के तीसरे दशक में सामाजिक न्याय का प्रश्न केवल एक सैद्धांतिक विमर्श नहीं, बल्कि वैश्विक और भारतीय राजनीति का केंद्रीय मुद्दा बन चुका है। वर्तमान समय के परिप्रेक्ष्य में जब हम सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक असमानताओं को देखते हैं, तो डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर और जॉन रॉल्स के विचार अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। दोनों चिंतकों ने भिन्न संदर्भों में न्याय की व्याख्या की, किंतु आज के समय में उनके सिद्धांत एक-दूसरे के पूरक रूप में दिखाई देते हैं।

1. बढ़ती आर्थिक असमानता और रॉल्स की प्रासंगिकता:- वैश्वीकरण, तकनीकी क्रांति और डिजिटल अर्थव्यवस्था ने अभूतपूर्व विकास के अवसर प्रदान किए हैं, किंतु इसके साथ ही आय और संपत्ति की असमानता भी बढ़ी है। विश्व के अनेक देशों में संपत्ति कुछ बड़े कॉर्पोरेट समूहों और सीमित वर्ग के हाथों में केंद्रित होती जा रही है। भारत में भी आर्थिक विकास के बावजूद ग्रामीण-शहरी अंतर, बेरोजगारी और अवसरों की विषमता एक गंभीर चुनौती बनी हुई है।

ऐसे परिदृश्य में रॉल्स का “अंतर का सिद्धांत” (Difference Principle), जो उनकी प्रसिद्ध कृति ‘न्याय का सिद्धान्त’ में प्रतिपादित है, अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। यह सिद्धांत कहता है कि सामाजिक-आर्थिक असमानताएँ तभी न्यायसंगत हैं जब वे समाज के सबसे कम सुविधा प्राप्त वर्ग के हित में हों। वर्तमान समय में जब सरकारें कल्याणकारी योजनाओं, न्यूनतम आय गारंटी, सामाजिक सुरक्षा, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार पर विचार कर रही हैं, तब रॉल्स का सिद्धांत नीति-निर्माण के लिए नैतिक आधार प्रदान करता है।

डिजिटल विभाजन भी आज एक नई असमानता के रूप में उभरा है। जिनके पास तकनीकी संसाधन और डिजिटल शिक्षा है, वे आगे बढ़ रहे हैं, जबकि वंचित वर्ग पीछे छूट रहा है। रॉल्स का “अवसर की निष्पक्ष समानता” (Fair Equality of Opportunity) का सिद्धांत इस संदर्भ में मार्गदर्शक सिद्ध होता है, क्योंकि यह केवल औपचारिक समानता नहीं, बल्कि वास्तविक अवसरों की समानता पर बल देता है।

2. जातिगत और सामाजिक असमानता: अंबेडकर की निरंतर प्रासंगिकता:- भारत के संदर्भ में वर्तमान समय में भी जातिगत भेदभाव, सामाजिक बहिष्कार और सांस्कृतिक अपमान की घटनाएँ पूरी तरह समाप्त नहीं हुई हैं। शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व में प्रगति के बावजूद सामाजिक संरचना में गहरे स्तर पर असमानता मौजूद है। ऐसे में अंबेडकर की कृति ‘जाति का उन्मूलन’ का संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना 1936 में था। उन्होंने स्पष्ट किया था कि जब तक जाति-व्यवस्था का उन्मूलन नहीं होगा, तब तक वास्तविक लोकतंत्र संभव नहीं है।

आज भी आरक्षण नीति, सामाजिक न्याय की योजनाएँ और संवैधानिक संरक्षण पर बहस जारी है। कुछ लोग इसे असमानता का कारण मानते हैं, जबकि अन्य इसे ऐतिहासिक अन्याय की भरपाई का आवश्यक साधन समझते हैं। इस बहस में अंबेडकर का दृष्टिकोण स्पष्ट मार्गदर्शन देता है। समानता केवल कानूनी प्रावधानों से नहीं आती, इसके लिए सामाजिक संरचना में परिवर्तन आवश्यक है।

3. पहचान की राजनीति और बंधुत्व का प्रश्न:- वर्तमान समय में विश्व के अनेक समाज पहचान-आधारित राजनीति के दौर से गुजर रहे हैं। जाति, नस्ल, धर्म और भाषा के आधार पर ध्रुवीकरण बढ़ रहा है। इस संदर्भ में अंबेडकर द्वारा प्रतिपादित “बंधुत्व” की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। अंबेडकर ने स्वतंत्रता और समानता को स्थायी बनाने के लिए बंधुत्व को आवश्यक शर्त माना। उन्होंने इसे सामाजिक लोकतंत्र का आधार कहा और गौतम बुद्ध के करुणा और समता के सिद्धांतों से जोड़ा। आज जब समाज में अविश्वास और विभाजन बढ़ रहा है, तब बंधुत्व का मूल्य सामाजिक समरसता के लिए अनिवार्य प्रतीत होता है।

4. संवैधानिक मूल्यों की रक्षा:- भारतीय लोकतंत्र वर्तमान समय में कई चुनौतियों का सामना कर रहा है। संस्थागत स्वायत्तता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और अल्पसंख्यक अधिकारों से जुड़े प्रश्न निरंतर चर्चा में हैं। अंबेडकर ने संविधान को सामाजिक क्रांति का उपकरण माना था। उनके अनुसार, संविधान तभी सफल होगा जब नागरिक और शासक दोनों संवैधानिक नैतिकता का पालन करेंगे।

रॉल्स भी संस्थागत संरचना की निष्पक्षता पर बल देते हैं। उनका मानना था कि न्यायपूर्ण समाज वही है, जिसकी मूल संरचना निष्पक्ष सिद्धांतों पर आधारित हो। आज जब लोकतांत्रिक संस्थाओं की विश्वसनीयता पर प्रश्न उठते हैं, तब रॉल्स और अंबेडकर दोनों का संस्थागत न्याय पर जोर अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है।

5. वैश्विक परिप्रेक्ष्य और मानवाधिकार:- वर्तमान समय में सामाजिक न्याय केवल राष्ट्रीय मुद्दा नहीं रहा, यह वैश्विक न्याय (Global Justice) का प्रश्न भी बन चुका है। जलवायु परिवर्तन, प्रवासन, शरणार्थी संकट और वैश्विक आर्थिक असमानता जैसे मुद्दे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर न्याय की नई परिभाषा की माँग कर रहे हैं।

रॉल्स ने अपने बाद के लेखन में “Law of Peoples” के माध्यम से वैश्विक न्याय पर विचार किया। वहीं अंबेडकर का मानव गरिमा पर आधारित दृष्टिकोण सार्वभौमिक मानवाधिकारों की अवधारणा से मेल खाता है। जलवायु न्याय (Climate Justice) के संदर्भ में भी रॉल्स का अंतर का सिद्धांत और अंबेडकर का कमजोर वर्गों के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण नीति-निर्माण के लिए नैतिक दिशा प्रदान करता है।

6. युवा पीढ़ी और सामाजिक चेतना:- वर्तमान समय की युवा पीढ़ी सोशल मीडिया, डिजिटल मंचों और वैश्विक संवाद के माध्यम से अधिक जागरूक है। सामाजिक आंदोलनों चाहे वे लैंगिक समानता के लिए हों, जाति-विरोधी अभियान हों या पर्यावरण संरक्षण के लिए इनमें न्याय की माँग स्पष्ट दिखाई देती है।

अंबेडकर का यह संदेश कि “शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो” आज भी युवाओं को प्रेरित करता है। वहीं रॉल्स का निष्पक्षता पर आधारित दृष्टिकोण युवाओं को यह सोचने के लिए प्रेरित करता है कि यदि वे अज्ञानता के पर्दे के पीछे हों, तो वे कैसा समाज चुनेंगे।

वर्तमान संदर्भ में रॉल्स और अंबेडकर दोनों के विचारों का संयुक्त अध्ययन अधिक सार्थक प्रतीत होता है। रॉल्स हमें न्यायपूर्ण संस्थागत ढाँचे की सैद्धांतिक रूपरेखा देते हैं, जबकि अंबेडकर हमें सामाजिक संरचना में परिवर्तन और मानवीय गरिमा की पुनर्स्थापना का व्यावहारिक मार्ग दिखाते हैं। आर्थिक असमानता के समाधान के लिए रॉल्स का अंतर का सिद्धांत और अवसर की समानता आवश्यक है, वहीं सामाजिक और सांस्कृतिक भेदभाव के उन्मूलन के लिए अंबेडकर का संरचनात्मक परिवर्तन और बंधुत्व का आदर्श अनिवार्य है।

वर्तमान समय के वैश्विक और भारतीय संदर्भ में सामाजिक न्याय की चुनौतियाँ बहुआयामी हैं – आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक। ऐसे में डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर और जॉन रॉल्स के विचार न केवल ऐतिहासिक महत्व रखते हैं, बल्कि समकालीन नीति-निर्माण और सामाजिक चेतना के लिए भी मार्गदर्शक हैं। निष्पक्ष संस्थाएँ, समान अवसर, मानवीय गरिमा और बंधुत्व ये सभी तत्व मिलकर ही एक न्यायपूर्ण समाज की रचना कर सकते हैं। अतः वर्तमान समय में इन दोनों चिंतकों के सिद्धांतों का समन्वय सामाजिक न्याय की दिशा में सबसे प्रभावी मार्ग प्रतीत होता है।

निष्कर्ष

सामाजिक न्याय की अवधारणा 20वीं शताब्दी के राजनीतिक दर्शन में एक केंद्रीय विमर्श के रूप में उभरी, और इस विमर्श को गहराई प्रदान करने में डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर तथा जॉन रॉल्स का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। दोनों

विचारकों ने न्याय को समाज की आधारभूत नैतिक शर्त माना, किंतु उनके दृष्टिकोण, पद्धति और लक्ष्य में महत्वपूर्ण भिन्नताएँ दिखाई देती हैं। यही भिन्नताएँ उनके चिंतन को समृद्ध और बहुआयामी बनाती हैं।

रॉल्स ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'न्याय का सिद्धान्त' में "निष्पक्षता के रूप में न्याय" (Justice as Fairness) की अवधारणा प्रस्तुत की। उनका प्रयास एक ऐसे सैद्धांतिक ढाँचे का निर्माण करना था, जिसे स्वतंत्र और समान नागरिक तर्कसंगत रूप से स्वीकार कर सकें। "अज्ञानता का पर्दा" (Veil of Ignorance) और "मूल स्थिति" (Original Position) जैसे दार्शनिक उपकरणों के माध्यम से उन्होंने यह दिखाने का प्रयास किया कि न्याय के सिद्धांत व्यक्तिगत हितों और सामाजिक पूर्वाग्रहों से परे होकर तय किए जाने चाहिए। उनके दो प्रमुख सिद्धांत समान स्वतंत्रता और अंतर का सिद्धांत आधुनिक लोकतांत्रिक एवं कल्याणकारी राज्य के लिए नैतिक आधार प्रदान करते हैं।

दूसरी ओर, अंबेडकर का सामाजिक न्याय दर्शन भारतीय समाज की ऐतिहासिक असमानताओं, विशेषकर जाति-व्यवस्था और अस्पृश्यता, के विरुद्ध एक संघर्षशील चेतना के रूप में विकसित हुआ। उनकी कृति 'जाति का उन्मूलन' में उन्होंने स्पष्ट किया कि जब तक सामाजिक संरचना में मूलभूत परिवर्तन नहीं होगा, तब तक राजनीतिक लोकतंत्र स्थायी नहीं रह सकता। अंबेडकर के लिए न्याय केवल संसाधनों के पुनर्वितरण का प्रश्न नहीं था, बल्कि मानवीय गरिमा, आत्म-सम्मान और सामाजिक बंधुत्व की पुनर्स्थापना का प्रश्न था।

तुलनात्मक दृष्टि से कहा जा सकता है कि रॉल्स का दृष्टिकोण अधिक सैद्धांतिक और प्रक्रियात्मक है, जबकि अंबेडकर का दृष्टिकोण व्यावहारिक और संरचनात्मक है। रॉल्स न्यायपूर्ण संस्थागत ढाँचे की कल्पना करते हैं, अंबेडकर अन्यायपूर्ण सामाजिक संरचना को बदलने का आह्वान करते हैं। रॉल्स असमानताओं को सीमित और नियंत्रित रूप में स्वीकार करते हैं, बशर्ते वे समाज के सबसे कमजोर वर्ग के हित में हों, अंबेडकर जन्म-आधारित असमानताओं को पूर्णतः समाप्त करने की आवश्यकता पर बल देते हैं।

फिर भी, दोनों विचारकों के बीच महत्वपूर्ण समानताएँ भी हैं। दोनों ने व्यक्ति की गरिमा को सर्वोच्च मूल्य माना। दोनों ने समानता और स्वतंत्रता को न्याय की अनिवार्य शर्त के रूप में स्वीकार किया। दोनों का चिंतन समाज के कमजोर और वंचित वर्ग के हितों की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध है। इस दृष्टि से रॉल्स का "Least Advantaged" और अंबेडकर का "वंचित वर्ग" एक साझा नैतिक चिंता को व्यक्त करते हैं।

समकालीन संदर्भ में, जब आर्थिक असमानता, सामाजिक भेदभाव, पहचान की राजनीति और संस्थागत संकट जैसी चुनौतियाँ सामने हैं, तब इन दोनों विचारकों का समन्वित अध्ययन अधिक प्रासंगिक हो जाता है। रॉल्स हमें यह सिखाते हैं कि न्यायपूर्ण समाज के लिए निष्पक्ष संस्थागत ढाँचा आवश्यक है, अंबेडकर हमें यह बताते हैं कि यदि सामाजिक संरचना में व्याप्त ऐतिहासिक अन्याय को दूर नहीं किया गया, तो कोई भी संस्थागत व्यवस्था वास्तविक न्याय नहीं दे सकती।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सामाजिक न्याय की व्यापक और संतुलित समझ के लिए रॉल्स और अंबेडकर दोनों के विचारों का समन्वय आवश्यक है। रॉल्स का उदारवादी-प्रक्रियात्मक मॉडल और अंबेडकर का क्रांतिकारी-संरचनात्मक दृष्टिकोण मिलकर एक ऐसे समाज की कल्पना प्रस्तुत करते हैं, जहाँ समान अवसर, मानवीय गरिमा,

सामाजिक बंधुत्व और निष्पक्ष संस्थाएँ एक साथ कार्य करें। यही समन्वित दृष्टिकोण 21वीं शताब्दी में वास्तविक और स्थायी सामाजिक न्याय की स्थापना का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

संदर्भ सूची

- अंबेडकर, बी. आर. (1936). *Annihilation of caste (जाति का विनाश)*. स्वयं प्रकाशित।
- अंबेडकर, बी. आर. (1945). *What Congress and Gandhi have done to the untouchables*. ठाकर एंड कंपनी।
- अंबेडकर, बी. आर. (1946). *Who were the Shudras?* अमृत बुक कंपनी।
- अंबेडकर, बी. आर. (1948). *The untouchables: Who were they and why they became untouchables?* अमृत बुक कंपनी।
- अंबेडकर, बी. आर. (1957). *The Buddha and his Dhamma*. सिद्धार्थ कॉलेज प्रकाशन।
- Rawls, J. (1971). *A theory of justice*. Harvard University Press.
- Rawls, J. (1993). *Political liberalism*. Columbia University Press.
- Rawls, J. (1999). *The law of peoples*. Harvard University Press.
- Rawls, J. (2001). *Justice as fairness: A restatement*. Harvard University Press.
- Parekh, B. (1990). *Gandhi's political philosophy*. Macmillan.
- Parekh, B. (2005). *Rethinking multiculturalism: Cultural diversity and political theory*. Palgrave Macmillan.
- Jaffrelot, C. (2005). *Dr Ambedkar and untouchability*. Permanent Black.
- Zelliott, E. (1992). *From untouchable to Dalit: Essays on the Ambedkar movement*. Manohar Publishers.
- Omvedt, G. (1994). *Dalits and the democratic revolution: Dr Ambedkar and the Dalit movement in colonial India*. Sage Publications.
- Omvedt, G. (2004). *Ambedkar: Towards an enlightened India*. Penguin.
- Bhargava, R. (2008). *Political theory: An introduction*. Pearson.
- Baxi, U. (2013). *The future of human rights*. Oxford University Press.
- Sen, A. (2009). *The idea of justice*. Harvard University Press.
- Nussbaum, M. C. (2006). *Frontiers of justice: Disability, nationality, species membership*. Harvard University Press.
- Sandel, M. J. (2009). *Justice: What's the right thing to do?* Farrar, Straus and Giroux.

- Taylor, C. (1994). *Multiculturalism: Examining the politics of recognition*. Princeton University Press.
- Fraser, N., & Honneth, A. (2003). *Redistribution or recognition? A political-philosophical exchange*. Verso.
- Young, I. M. (1990). *Justice and the politics of difference*. Princeton University Press.
- Kymlicka, W. (1995). *Multicultural citizenship: A liberal theory of minority rights*. Oxford University Press.
- Béteille, A. (1991). *Society and politics in India*. Oxford University Press.
- Srinivas, M. N. (1966). *Social change in modern India*. University of California Press.
- Oommen, T. K. (2010). *Social justice and human rights*. Sage Publications.